Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
May 2024 5(5), 1894–1904

FROM SOCIAL JUSTICE TO POLITICAL EQUALITY: AMBEDKAR'S DEMOCRATIC DREAM

सामाजिक न्याय से राजनीतिक समानता तक: अंबेडकर का लोकतांत्रिक सपना

Manoj Kumar [1]

[1] Assistant Professor, Department of Political Science, Kunwar Singh PG College, Ballia-277001, Uttar Pradesh, India

ABSTRACT

English: Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar's democratic vision does not limit Indian democracy to mere electoral processes and institutional structures but defines it as a way of life based on social justice, equality, and fraternity. According to him, political equality cannot be meaningful unless the deeply ingrained caste discrimination, economic inequality, and social exclusion in society are eradicated. In the Constituent Assembly, he warned that India was entering a "life of contradictions"—where there would be equality in politics, but inequality in socio-economic life would persist.

Ambedkar considered democracy "a way of life" that embodies the values of liberty, equality, and fraternity. He considered measures such as constitutional morality, social justice, affirmative action, land reforms, labor rights, and universal education essential for making political democracy lasting and meaningful. His approach, departing from both liberal and Marxist traditions, placed caste oppression at the center and emphasized social democracy as the foundation of political democracy.

This paper analyzes Ambedkar's democratic philosophy and argues that the depth and sustainability of democracy in India is possible only on the foundation of social justice. Even today, when caste discrimination, economic inequality, and challenges to political representation persist, Ambedkar's democratic vision provides guiding principles for strengthening and revitalizing democracy in the 21st century.

Hindi: डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का लोकतांत्रिक चिंतन भारतीय लोकतंत्र को केवल चुनावी प्रक्रियाओं और संस्थागत ढाँचों तक सीमित नहीं करता, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, समानता और बंधुत्व पर आधारित जीवन-पद्धति के रूप में परिभाषित करता है। उनके अनुसार राजनीतिक समानता तब तक सार्थक नहीं हो सकती जब तक समाज में गहरे पैठे जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता और सामाजिक बहिष्कार का उन्मूलन न किया जाए। संविधान सभा में उन्होंने चेतावनी दी थी कि भारत "विरोधाभासों के जीवन" में प्रवेश कर रहा है—जहाँ राजनीति में समानता होगी, लेकिन सामाजिक-आर्थिक जीवन में असमानता बनी रहेगी।

अम्बेडकर जी ने लोकतंत्र को "जीवन का एक तरीका" माना, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों का समावेश हो। उन्होंने संवैधानिक नैतिकता, सामाजिक न्याय, सकारात्मक कार्रवाई, भूमि सुधार, श्रम अधिकार और सार्वभौमिक शिक्षा जैसे उपायों को राजनीतिक लोकतंत्र को स्थायी और सार्थक बनाने के लिए अनिवार्य माना। उनके दृष्टिकोण ने उदारवादी और मार्क्सवादी दोनों परंपराओं से अलग हटकर जातिगत उत्पीड़न को केंद्र में रखा और सामाजिक लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र का आधार बताया।

इस शोधपत्र में अम्बेडकर जी के लोकतांत्रिक दर्शन का विश्लेषण करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि भारत में लोकतंत्र की गहराई और स्थिरता सामाजिक न्याय की बुनियाद पर ही संभव है। आज भी जब जातिगत भेदभाव, आर्थिक विषमता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की चुनौतियाँ विद्यमान हैं, तब अम्बेडकर का यह लोकतांत्रिक सपना 21वीं सदी में लोकतंत्र को सशक्त और जीवंत बनाने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्रदान करता है।

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i5.2024.6525

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

1. प्रस्तावना

भारत के लिए डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर जी की लोकतांत्रिक दृष्टि इस विश्वास पर आधारित थी कि सामाजिक न्याय सुनिश्चित किए बिना राजनीतिक समानता प्राप्त करना असंभव है। भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार के रूप में, अम्बेडकर जी इस बात से पूरी तरह अवगत थे कि राजनीतिक लोकतंत्र-जो सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और कानून के समक्ष समानता जैसे सिद्धांतों पर आधारित है-गहरे सामाजिक परिवर्तन के अभाव में विफल हो जाएगा। उनके लिए, लोकतंत्र केवल शासन का एक प्रक्रियात्मक तंत्र नहीं था, बल्कि स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर निर्मित एक नैतिक और सामाजिक व्यवस्था थी (Ambedkar, 1945/2014)। उनके जीवन का कार्य जाति-आधारित पदानुक्रम को समाप्त करने का एक निरंतर प्रयास था, जिसे वे एक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत भारत को साकार करने में सबसे हानिकारक बाधा मानते थे।

अम्बेडकर जी के लोकतांत्रिक दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत यह है कि सामाजिक न्याय राजनीतिक समानता का आधार है। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि संविधान औपचारिक राजनीतिक अधिकार प्रदान कर सकता है, जैसे कि मतदान करने या चुनाव लड़ने का अधिकार, ये हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए खोखला रहेगा जब तक कि जातिगत उत्पीड़न, आर्थिक अभाव और सामाजिक बहिष्कार को खत्म करने के उद्देश्य से संरचनात्मक सुधारों द्वारा समर्थित नहीं किया जाता है (Ambedkar, 1936/2014) संविधान सभा की बहसों के दौरान उनकी प्रसिद्ध चेतावनी-राजनीतिक समानता और सामाजिक असमानता के बीच "विरोधाभासों के जीवन" की चेतावनी-भारत के राजनीतिक इतिहास में सबसे दूरदर्शी बयानों में से एक है (Ambedkar, 1949)

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र-निर्माण के संदर्भ में, अम्बेडकर जी का दृष्टिकोण व्यावहारिक और दूरदर्शी दोनों था। 1947 में भारत के राजनीतिक नेतृत्व को एक नए मुक्त लेकिन गहराई से विभाजित समाज को एक लोकतांत्रिक ढांचे में एकीकृत करने की विशाल चुनौती का सामना करना पड़ा। विरोधाभास स्पष्ट थेः जबकि "एक व्यक्ति, एक वोट" के सिद्धांत ने औपचारिक समानता का वादा किया था, सदियों के जाति-आधारित भेदभाव, अस्पृश्यता और वंशानुगत विशेषाधिकार ने आबादी के बड़े हिस्से को शिक्षा, संपत्ति या सामाजिक गतिशीलता के बिना छोड़ दिया था (Galanter, 1984) अम्बेडकर समझ गए थे कि ये अंतर्निहित असमानताएँ हाशिए पर पड़े समूहों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पूरी तरह से भाग लेने से रोकेंगी, जिससे नई राजनीतिक व्यवस्था की वैधता और स्थिरता को कम किया जा सकेगा।

अम्बेडकर जी की लोकतांत्रिक दृष्टि भी संवैधानिक नैतिकता की उनकी व्याख्या में निहित थी, एक अवधारणा जिसे उन्होंने ब्रिटिश संविधानवादी जॉर्ज ग्रोट से उधार लिया था लेकिन भारतीय संदर्भ के अनुकूल बना लिया था। अम्बेडकर के लिए संवैधानिक नैतिकता का अर्थ था व्यक्तिगत, सांप्रदायिक या जातिगत निष्ठाओं पर संविधान में निहित सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता (Austin, 1999)। उनका मानना था कि नेताओं और नागरिकों दोनों की इस नैतिक प्रतिबद्धता के बिना, संविधान सबसे कमजोर लोगों के अधिकारों की रक्षा करने में विफल रहेगा, और लोकतंत्र बहुसंख्यकवादी शासन में बदल जाएगा।

इसके अतिरिक्त , सामाजिक न्याय पर अम्बेडकर जी का जोर केवल कानूनी और संस्थागत सुधारों तक ही सीमित नहीं था; इसमें व्यापक सामाजिक-आर्थिक नीतियां शामिल थीं। सकारात्मक कार्रवाई, भूमि सुधार, श्रम अधिकारों और सार्वभौमिक शिक्षा के लिए उनकी वकालत का उद्देश्य एक समान अवसर का निर्माण करना था जहां राजनीतिक अधिकारों का सार्थक रूप से प्रयोग किया जा सके (Jaffrelot, 2005) इन उपायों ने उनके इस विश्वास को प्रतिबिंबित किया कि सच्चे लोकतंत्र के लिए व्यक्तियों के कानूनी सशक्तिकरण और असमानता को कायम रखने वाली सामाजिक संरचनाओं को समाप्त करने दोनों की आवश्यकता होती है।

संक्षेप में, अम्बेडकर जी का लोकतांत्रिक सपना एक एकीकृत दृष्टिकोण था जहां सामाजिक न्याय और राजनीतिक समानता पारस्परिक रूप से मजबूत थी। उन्होंने एक ऐसे समाज का निर्माण करने का प्रयास किया जिसमें व्यक्ति, जाति, धर्म या लिंग की परवाह किए बिना, न केवल संविधान द्वारा गारंटीकृत औपचारिक अधिकारों का आनंद ले सकें, बल्कि गरिमा, अवसर की समानता और सामाजिक समावेश से उत्पन्न होने वाली पर्याप्त स्वतंत्रताओं का भी आनंद ले सकें। जैसा कि भारत जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के मुद्दों से जूझ रहा है, राजनीतिक समानता की नींव के रूप में सामाजिक न्याय पर अंबेडकर का आग्रह 21वीं सदी में लोकतंत्र को गहरा करने के लिए एक मार्गदर्शक ढांचा बना हुआ है।

2. अम्बेडकर की लोकतंत्र की समझ

डॉ. अम्बेडकर, लोकतंत्र चुनावों, संसदों और विधानसभाओं की यांत्रिक प्रक्रियाओं तक ही सीमित नहीं था; बल्कि, यह एक नैतिक और सामाजिक आदर्श था-जीवन का एक तरीका। उन्होंने लोकतंत्र को "स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों के साथ जुड़े जीवन जीने का एक तरीका" के रूप में परिभाषित किया (Ambedkar, 1945/2014, पृष्ठ 12)। यह परिभाषा 20वीं शताब्दी के मध्य में प्रचलित लोकतंत्र की संकीर्ण राजनीतिक व्याख्याओं से अलग हो गई, इसके बजाय एक ऐसी दृष्टि के साथ संरेखित हुई जो राजनीतिक भागीदारी के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन पर जोर देती थी।

2.1. संस्थाओं से परे लोकतंत्र

अम्बेडकर जी ने राजनीतिक लोकतंत्र को देखा-जिसका प्रतिनिधित्व सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, कानून के समक्ष समानता और प्रतिनिधि सरकार द्वारा किया जाता है-जो आवश्यक लेकिन अपर्याप्त था। उन्होंने तर्क दिया कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक खुद को बनाए नहीं रख सकता जब तक कि यह सामाजिक लोकतंत्र पर आधारित न हो, जिसे उन्होंने "जीवन के उस तरीके के रूप में वर्णित किया जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में मान्यता देता है" (Ambedkar, 1949) इन अंतर्निहित सामाजिक मूल्यों के बिना, उन्हें डर था कि लोकतंत्र "बहुमत के अत्याचार" में बदल सकता है या प्रमुख सामाजिक समूहों द्वारा हेरफेर किया जा सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य ने अम्बेडकर को दोनों उदार व्यक्तिवादियों के विपरीत रखा, जो प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों पर ध्यान केंद्रित करते थे, और मार्क्सवादी, जो आर्थिक समानता पर जोर देते थे, लेकिन अक्सर जाति जैसे सामाजिक पदानुक्रम की उपेक्षा करते थे। अम्बेडकर के लिए, जाति उत्पीड़न को समाप्त करना लोकतंत्र के लिए उतना ही आवश्यक था जितना कि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करना।

2.2. राजनीतिक और सामाजिक लोकतंत्र के बीच अंतर्संबंध

अम्बेडकर जी लगातार राजनीतिक लोकतंत्र और सामाजिक लोकतंत्र की परस्पर निर्भरता पर जोर देते रहे। उनके विचार में, राजनीतिक लोकतंत्र नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार प्रदान करता है-जैसे कि मतदान और पद धारण करना-लेकिन ये अधिकार तभी सार्थक होते हैं जब नागरिक सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में समानता का आनंद लेते हैं (Rodrigues, 2002) एक व्यक्ति को वोट देने का कानूनी अधिकार हो सकता है, लेकिन अगर वे जातिगत भेदभाव, आर्थिक निर्भरता या सामाजिक बहिष्कार की शर्तों के तहत रहते हैं, तो लोकतांत्रिक जीवन में सार्थक रूप से भाग लेने की उनकी क्षमता से गंभीर रूप से समझौता किया जाता है।

25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में अपने भाषण में अम्बेडकर ने चेतावनी दी: "हम विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में समानता होगी और सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और एक वोट एक मूल्य के सिद्धांत को मान्यता देंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में, हम अपने सामाजिक और आर्थिक ढांचे के कारण, एक व्यक्ति एक मूल्य के सिद्धांत से इनकार करते रहेंगे।" (Ambedkar, 1949)

उनका यह वक्तव्य उनके इस डर को दर्शाता है कि सामाजिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र खोखला और अल्पकालिक हो जाएगा।

2.3. स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व

अम्बेडकर का लोकतांत्रिक दर्शन स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की त्रिकोणीय अंतर संबंध में निहित था, जो उन्होंने प्रबुद्ध विचार और बौद्ध नैतिकता दोनों से प्राप्त किया था। अम्बेडकर जी के लिए स्वतंत्रता का अर्थ केवल राजनीतिक उत्पीड़न से मुक्ति नहीं था, बल्कि मानव विकास में बाधा डालने वाली सामाजिक और आर्थिक बाधाओं से भी मुक्ति थी। समानता में न केवल कानूनी समानता निहित थी, बल्कि जाति-आधारित विशेषाधिकार और विरासत में मिले नुकसान का उन्मूलन भी निहित था। बंधुत्व, शायद उनके विचार में सबसे विशिष्ट तत्व, सामाजिक एकजुटता की भावना का उल्लेख करता है जो व्यक्तियों को समान रूप से, जाति, धर्म और आर्थिक स्थिति से परे एक साथ बांधता है (Jaffrelot, 2005)

उन्होंने तर्क दिया कि बंधुत्व एक नैतिक आधार है जिसके बिना स्वतंत्रता और समानता का सह-अस्तित्व नहीं हो सकता है। बंधुत्व के बिना, स्वतंत्रता कमजोरों का शोषण करने के लिए शक्तिशाली लोगों की स्वतंत्रता में पतित हो सकती है, और समानता ठोस वास्तविकता के बिना एक औपचारिक कानूनी प्रावधान बन सकती है। बंधुत्व पर जोर देकर, अम्बेडकर जी ने लोकतंत्र को मानवीय बनाने की कोशिश की, जिससे यह न केवल एक राजनीतिक व्यवस्था बल्कि एक साझा सामाजिक नैतिकता भी बन गई।

अम्बेडकर जी की लोकतंत्र की समझ इस प्रकार गहन रूप से समग्र थी। उन्होंने इसे राजनीतिक संरचनाओं और सामाजिक मूल्यों के संयोजन के रूप में कल्पना की, जिनमें से प्रत्येक दूसरे को मजबूत करता है। राजनीतिक लोकतंत्र संस्थागत ढांचा प्रदान करेगा, जबकि सामाजिक लोकतंत्र नैतिक और सांस्कृतिक नींव प्रदान करेगा। अंतिम लक्ष्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना था जहाँ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व केवल संवैधानिक आदर्श नहीं थे, बल्कि वास्तविकताएँ थीं। इस एकीकरण के अभाव में, उनका मानना था कि लोकतंत्र नाजुक बना रहेगा, जो सामाजिक स्तरीकरण और आर्थिक शोषण की ताकतों के लिए असुरक्षित होगा।

3. अविभाज्य सामाजिक न्याय

डॉ. अम्बेडकर, राजनीतिक समानता की खोज सामाजिक न्याय की प्राप्ति से अविभाज्य थी। उन्होंने माना कि जाति पदानुक्रम, अस्पृश्यता और आर्थिक असमानताओं से चिह्नित समाज लोकतांत्रिक शासन को बनाए नहीं रख सकता है। इन मूलभूत अन्यायों को संबोधित किए बिना, सार्वभौमिक मताधिकार द्वारा प्रदान की गई औपचारिक समानता भ्रामक बनी रहेगी। इस प्रकार, उनकी दृष्टि में, सामाजिक न्याय एक पूरक लक्ष्य नहीं था, बल्कि राजनीतिक समानता के लिए आवश्यक पूर्व शर्त था।

3.1. प्राथमिक बाधा के रूप में जाति

अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था को भारत में लोकतंत्र के लिए सबसे व्यापक बाधा के रूप में पहचाना। जाति के उन्मूलन (1936/2014) में उन्होंने जाति को "बिना सीढ़ियों वाली बहुमंजिला इमारत" के रूप में वर्णित किया, जो कठोर, वंशानुगत विभाजन का प्रतीक है जो गतिशीलता और समानता से इनकार करता है। उन्होंने तर्क दिया कि जाति केवल सामाजिक स्तरीकरण का एक रूप नहीं है, बल्कि श्रेणीबद्ध असमानता की एक प्रणाली है जो कुछ लोगों के लिए विशेषाधिकार को संस्थागत बनाती है जबकि दूसरों के लिए उत्पीड़न को कायम रखती है। उन्होंने जोर देकर कहा कि ऐसे समाज में राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग कभी भी समान आधार पर नहीं किया जा सकता (Ambedkar, 1936/2014)

3.2. आर्थिक अभाव और सामाजिक बहिष्कार

अम्बेडकर की सामाजिक न्याय की समझ आर्थिक और शैक्षिक असमानताओं को शामिल करने के लिए जाति से परे थी। हाशिए पर पड़े समुदायों-अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य सामाजिक रूप से वंचित समूहों-को व्यवस्थित रूप से भूमि, शिक्षा और रोजगार के अवसरों से वंचित कर दिया गया था। इस बहिष्कार ने गरीबी और निर्भरता का एक चक्र बनाया, जिससे उनके लिए राजनीतिक अधिकारों से लाभ उठाना असंभव हो गया। जैसा कि Galanter (1984) ने देखा, अम्बेडकर जी ने सामाजिक और आर्थिक अक्षमताओं को हटाने को नागरिकता के किसी भी सार्थक अभ्यास के लिए एक पूर्व शर्त के रूप में देखा।

3.3. कानूनी और संस्थागत सुधार

अम्बेडकर जी ने संविधान का उपयोग सामाजिक न्याय को लोकतांत्रिक ढांचे में शामिल करने के लिए एक उपकरण के रूप में किया। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने भेदभाव को रोकने के लिए मौलिक अधिकारों (भाग III), सामाजिक-आर्थिक सुधारों का मार्गदर्शन करने के लिए राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों (भाग IV) और शिक्षा, रोजगार और विधानसभाओं में वंचित समूहों के लिए प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई (अनुच्छेद 15 (4) 16 (4) और 330) के लिए विशिष्ट प्रावधानों को सम्मिलित करना सुनिश्चित किया। इन उपायों का उद्देश्य खेल के मैदान को समतल करना था ताकि राजनीतिक अधिकारों का प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सके (Austin, 1999)

3.4. राजनीतिक सामाजिक न्याय के परिणाम के रूप में समानता

अम्बेडकर जी के ढांचे ने सामाजिक न्याय को न केवल एक नैतिक आकांक्षा के रूप में बल्कि लोकतंत्र के कामकाज के लिए एक व्यावहारिक आवश्यकता के रूप में माना। उन्होंने तर्क दिया कि संरचनात्मक बाधाओं को समाप्त किए बिना, राजनीतिक प्रणाली द्वारा प्रदान की जाने वाली औपचारिक समानता वास्तविक दुनिया की असमानताओं से कमजोर हो जाएगी। संविधान सभा की बहसों (1949) में उन्होंने चेतावनी दी थी कि सामाजिक न्याय की अनदेखी करने से "राजनीतिक लोकतंत्र की संरचना ध्वस्त हो जाएगी।"

सामाजिक और राजनीतिक समानता के बीच यह संबंध महत्वपूर्ण है। राजनीतिक लोकतंत्र एक व्यक्ति, एक वोट की गारंटी देता है; सामाजिक न्याय यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के वोट का न केवल कानूनी महत्व हो, बल्कि गरिमा और अवसर में निहित पर्याप्त शक्ति भी हो।

3.5. समकालीन प्रासंगिकता

वर्तमान भारत में जाति-आधारित भेदभाव, शैक्षिक असमानता और आर्थिक असमानता की दृढ़ता सामाजिक न्याय पर अम्बेडकर के आग्रह की निरंतर प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। संवैधानिक सुरक्षा उपायों के बावजूद, सत्ता के पदों पर हाशिए पर पड़े समुदायों का प्रतिनिधित्व असमान

बना हुआ है और सामाजिक-आर्थिक अंतराल बने हुए हैं। Jaffrelot (2005) के अनुसार, इन असमानताओं की सहनशीलता अंबेडकर के इस विश्वास को प्रमाणित करती है कि सामाजिक सुधार को राजनीतिक सुधार से पहले-और उसके साथ-साथ होना चाहिए।

अम्बेडकर जी का यह कहना कि सामाजिक न्याय राजनीतिक समानता की नींव है, संरचनात्मक असमानताओं को नजरअंदाज करने वाले किसी भी लोकतंत्र को चुनौती देता है। उनके लिए राजनीतिक अधिकार तभी सार्थक थे जब जाति को समाप्त करने, आर्थिक निष्पक्षता सुनिश्चित करने और समावेशी विकास को बढ़ावा देने के लिए संस्थागत उपायों का समर्थन किया जाता था। इस तरह, सामाजिक न्याय केवल लोकतंत्र के लिए प्रारंभिक नहीं था-यह लोकतंत्र का जीवन-रक्त था।

4. संवैधानिक सुरक्षा उपाय

डॉ. अम्बेडकर समझ गए थे कि एक गहरे पदानुक्रमित समाज में राजनीतिक समानता प्राप्त करने के लिए अमूर्त सिद्धांतों से अधिक की आवश्यकता होती है-यह ठोस कानूनी और संस्थागत सुरक्षा उपायों की मांग करता है। भारतीय संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने सामाजिक न्याय के प्रावधानों को सीधे संवैधानिक ढांचे में शामिल करने का काम किया। इन सुरक्षा उपायों को संरचनात्मक असमानताओं को दूर करने, उपेक्षित समूहों के अधिकारों की रक्षा करने और ऐसी परिस्थितियां पैदा करने के लिए तैयार किया गया था जिनके तहत राजनीतिक लोकतंत्र पनप सकता था।

4.1. मौलिक अधिकार

संविधान के मौलिक अधिकार (भाग III) अम्बेडकर की लोकतांत्रिक दृष्टि की आधारशिला हैं। अनुच्छेद 14 से 18 कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है और धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। अनुच्छेद 17 विशेष रूप से अस्पृश्यता को समाप्त करता है, इसके अभ्यास को दंडनीय अपराध घोषित करता है। अम्बेडकर ने इसे एक नैतिक और कानूनी घोषणा के रूप में देखा कि लोकतांत्रिक समाज में जाति-आधारित बहिष्कार का कोई स्थान नहीं है (Austin, 1999)

अनुच्छेद 15 (1) राज्य द्वारा भेदभाव को प्रतिबंधित करता है, जबकि अनुच्छेद 15 (4) सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधानों की अनुमति देता है। इसी तरह, अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में अवसर की समानता सुनिश्चित करता है और अनुच्छेद 16 (4) के माध्यम से कम प्रतिनिधित्व वाले समुदायों के लिए आरक्षण की अनुमति देता है।

4.2. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत

निर्देशक सिद्धांत (भाग IV) मौलिक अधिकारों के पूरक के लिए एक सामाजिक-आर्थिक रोडमैप प्रदान करते हैं। हालाँकि ये सिद्धांत न्यायोचित नहीं हैं, लेकिन ये अंबेडकर के इस विश्वास को दर्शाते हैं कि राजनीतिक समानता को बनाए रखने के लिए सामाजिक और आर्थिक सुधार आवश्यक हैं। अनुच्छेद 39 (आजीविका के पर्याप्त साधन और संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करना) और अनुच्छेद 46 (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देना) जैसे प्रावधानों का उद्देश्य समय के साथ असमानता को कम करना है (Austin, 1999)

अम्बेडकर जी ने इन निर्देशों को राज्य के लिए "निर्देश के साधन" के रूप में माना, यह सुनिश्चित करते हुए कि शासन सामाजिक लोकतंत्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में लगातार आगे बढ़े (संविधान सभा बहस, 1949)

4.3. आरक्षण नीतियाँ और राजनीतिक प्रतिनिधित्व

अंबेडकर के सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विधानसभाओं (अनुच्छेद 330-334) में आरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधान था। यह ऐतिहासिक रूप से शासन से बाहर रखे गए समुदायों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व की गारंटी देता है। अम्बेडकर ने तर्क दिया कि सुनिश्चित प्रतिनिधित्व के बिना, राजनीतिक प्रक्रिया में उच्च जाति के हितों का वर्चस्व बना रहेगा, जिससे असमानता बनी रहेगी (Jaffrelot, 2005)

प्रणालीगत कम प्रतिनिधित्व को दूर करने के लिए शिक्षा और रोजगार में आरक्षण को भी संस्थागत बनाया गया था। इन उपायों की कल्पना स्थायी विशेषाधिकारों के रूप में नहीं की गई थी, बल्कि पर्याप्त समानता प्राप्त करने के लिए संक्रमणकालीन उपकरणों के रूप में की गई थी (Galanter, 1984)

4.4. भेदभाव और शोषण के विरुद्ध सुरक्षा उपाय

राजनीतिक और शैक्षिक उपायों के अतिरिक्त, संविधान में कमजोर समूहों के लिए स्पष्ट सुरक्षा शामिल है। अनुच्छेद 23 जबरन श्रम को प्रतिबंधित करता है, जबकि अनुच्छेद 24 बच्चों को खतरनाक व्यवसायों में नियुक्त करने पर प्रतिबंध लगाता है। ये प्रावधान विशेष रूप से बंधुआ श्रम जैसी शोषक श्रम प्रणालियों में फंसे समुदायों के लिए प्रासंगिक थे, जो अक्सर जाति की स्थिति से बंधे होते हैं।

4.5. औपचारिक और सारवान समानता को संतुलित करना

पुनः, अम्बेडकर जी की संवैधानिक रचना समानता की उनकी सूक्ष्म समझ को दर्शाती है। गहरी संरचनात्मक असमानताओं वाले समाज में औपचारिक समानता-सभी के साथ समान व्यवहार-अपर्याप्त होगी। इस प्रकार, उन्होंने मूल समानता का समर्थन किया, जो विभिन्न प्रारंभिक बिंदुओं को पहचानती है और सकारात्मक उपायों के माध्यम से प्रणालीगत नुकसान को दूर करती है। इस दृष्टिकोण ने अंबेडकर को उन लोगों से अलग किया जो सकारात्मक कार्रवाई को लोकतांत्रिक सिद्धांतों के साथ असंगत मानते थे; उनके लिए, लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए घोषित लक्ष्यों को प्राप्त करना आवश्यक था (Rodrigues, 2002)

अम्बेडकर जी द्वारा समर्थित संवैधानिक सुरक्षा उपाय कानूनी सुरक्षा से कहीं अधिक थे; वे सामाजिक परिवर्तन के साधन थे। सामाजिक न्याय को संविधान की संरचना में एकीकृत करके, अम्बेडकर ने यह सुनिश्चित किया कि राजनीतिक लोकतंत्र को जातिगत पदानुक्रम को समाप्त करने, आर्थिक निष्पक्षता को बढ़ावा देने और प्रतिनिधित्व की गारंटी देने के लिए एक निरंतर प्रतिबद्धता द्वारा रेखांकित किया जाएगा। इन उपायों का उद्देश्य गतिशील होना था, बदलती सामाजिक-राजनीतिक वास्तविकताओं के अनुकूल होना, जबकि इस मूलभूत सिद्धांत के प्रति वफादार रहना कि सामाजिक न्याय के बिना राजनीतिक समानता मौजूद नहीं हो सकती है।

5. सामाजिक न्याय और राजनीतिक समानता को पाटना

डॉ. अम्बेडकर की लोकतांत्रिक दृष्टि ने स्वीकार किया कि राजनीतिक लोकतंत्र और सामाजिक लोकतंत्र परस्पर निर्भर हैं। जबकि राजनीतिक लोकतंत्र औपचारिक समानता सुनिश्चित करता है-एक व्यक्ति, एक वोट-सामाजिक लोकतंत्र सामाजिक स्थितियों का निर्माण करता है जिसके तहत उन राजनीतिक अधिकारों का सार्थक रूप से प्रयोग किया जा सकता है। इन दोनों के बीच की खाई को पाटना अंबेडकर के लिए स्वतंत्रता के बाद के भारत की सबसे बड़ी चुनौती थी।

5.1. सामाजिक न्याय के बिना राजनीतिक समानता की खोखली प्रकृति

अम्बेडकर जी लगातार चेतावनी देते रहे कि यदि सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बनी रहती हैं तो राजनीतिक समानता एक खाली खोल बन सकती है। 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा में अपने भाषण में उन्होंने प्रसिद्ध रूप से कहाः "हम विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में समानता होगी और सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी।

उन्हें आशंका थी कि यह विरोधाभास असंतोष पैदा करेगा और अंततः राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता को खतरे में डाल देगा (Ambedkar, 1949)। अम्बेडकर के लिए, वोट सशक्तिकरण का एक आवश्यक साधन था, लेकिन यह अपने आप में सदियों पुरानी बहिष्करण प्रणाली को समाप्त नहीं कर सका। सच्ची राजनीतिक समानता की आवश्यकता है कि ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों की शिक्षा, आर्थिक अवसरों और सामाजिक गरिमा तक पहुंच हो-ऐसी स्थितियां जो केवल निरंतर सामाजिक न्याय उपायों के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं (Galanter, 1984)

5.2. सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में राजनीतिक शक्ति

अम्बेडकर जी राजनीतिक शक्ति को अंत के रूप में नहीं बल्कि सामाजिक सुधार प्राप्त करने के साधन के रूप में देखते थे। राज्यों और अल्पसंख्यकों (1945/2014) में उन्होंने संसाधनों के पुनर्वितरण, श्रम अधिकारों को सुरक्षित करने और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुंच का विस्तार करने के लिए संवैधानिक और नीतिगत तंत्र का प्रस्ताव दिया। उनके लिए, वंचित समूहों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व महत्वपूर्ण था, लेकिन इसे उन नीतियों द्वारा समर्थित किया जाना था जो प्रणालीगत असमानताओं को संबोधित करती थीं।

उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि समुदायों को लोकतांत्रिक संस्थानों के भीतर आवाज और एजेंसी दोनों की आवश्यकता है। वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति के बिना, प्रतिनिधित्व सांकेतिकता में पतित हो सकता है, सामाजिक पदानुक्रम को समाप्त करने के बजाय मजबूत कर सकता है (Jaffrelot, 2005)

5.3. दो लोकतंत्रों का संस्थागत एकीकरण

भारतीय संविधान कानूनी गारंटी (मौलिक अधिकार) नीतिगत निर्देशों (निर्देशक सिद्धांतों) और सकारात्मक कार्रवाई (आरक्षण) के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक लोकतंत्र को एकीकृत करने के अंबेडकर के प्रयास को दर्शाता है इस त्रिपक्षीय ढांचे का उद्देश्य उपेक्षित समाज को बदलना था ताकि सभी नागरिक राजनीतिक प्रक्रिया में समान रूप से भाग ले सकें।

अम्बेडकर जी ने संवैधानिक नैतिकता को भी बढ़ावा दिया-न केवल संविधान की भावना को बनाए रखने के लिए नेताओं और नागरिकों की नैतिक प्रतिबद्धता। इस तरह के नैतिक अनुशासन के बिना, उन्होंने चेतावनी दी, राजनीतिक समानता सतही रहेगी, और सामाजिक न्याय को निहित पूर्वाग्रहों द्वारा कमजोर किया जाएगा (Austin, 1999)

5.4. समकालीन प्रासंगिकता

आज के भारत में सामाजिक न्याय और राजनीतिक समानता के बीच का सेतु अधूरा है। जबकि सार्वभौमिक मताधिकार ने औपचारिक राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित की है, धन, शिक्षा, स्वास्थ्य और जाति की स्थिति में असमानताएं अंबेडकर जी द्वारा परिकल्पित पर्याप्त समानता को सीमित करना जारी रखती हैं। इन असमानताओं की दृढ़ता उनके इस विश्वास को पुष्ट करती है कि सामाजिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र के अस्थिर और बहिष्कृत होने का खतरा है।

आधुनिक नीतिगत बहस-सकारात्मक कार्रवाई, शैक्षिक सुधार, भूमि पुनर्वितरण और प्रतिनिधित्व-अनिवार्य रूप से इस पुल को मजबूत करने के तरीके पर चर्चा हैं। चुनौती यह सुनिश्चित करने में निहित है कि सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के उपाय तेजी से बदलती अर्थव्यवस्था और समाज में असमानता के विकसित रूपों के साथ तालमेल रखते हैं (Ro-drigues, 2002)

सामाजिक न्याय और राजनीतिक समानता को पाटने के लिए अम्बेडकर का ढांचा संरचनात्मक और नैतिक दोनों था। संरचनात्मक रूप से, इसने संविधान में समानता को बढ़ावा देने वाले प्रावधानों को शामिल किया; नैतिक रूप से, इसने नागरिकों से लोकतांत्रिक जीवन की नींव के रूप में बंधुत्व को अपनाने का आह्वान किया। इस एकीकृत दृष्टिकोण ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि मतदान के अधिकार का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने की क्षमता से मिलान किया जाए, जिससे लोकतंत्र को कानूनी औपचारिकता से एक जीवित वास्तविकता में बदल दिया जाए।

6. सपने को साकार करने की चुनौतियां

जबकि डॉ. अम्बेडकर की संवैधानिक दृष्टि ने सामाजिक न्याय को राजनीतिक समानता के ढांचे में अंतर्निहित किया, स्वतंत्रता के बाद के भारत की जीवित वास्तविकता से पता चलता है कि यह सपना केवल आंशिक रूप से पूरा हुआ है। महत्वपूर्ण कानूनी सुरक्षा उपायों और संस्थागत उपायों के बावजूद, कई संरचनात्मक और सामाजिक-राजनीतिक चुनौतियों ने लोकतंत्र के उनके एकीकृत दृष्टिकोण को पूरी तरह से साकार करने में बाधा उत्पन्न की है।

6.1. जाति-आधारित भेदभाव की दृढ़ता

जाति-आधारित भेदभाव की निरंतर व्यापकता सबसे स्थायी चुनौतियों में से एक है। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया था, लेकिन यह प्रथा प्रत्यक्ष और सूक्ष्म दोनों रूपों में बनी हुई है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में जहां जाति पदानुक्रम गहराई से स्थापित हैं (Galanter, 1984) जाति-आधारित हिंसा, सार्वजनिक स्थानों से बहिष्कार और शिक्षा और रोजगार में भेदभावपूर्ण प्रथाओं की घटनाएं कानून के समक्ष समानता के वादे को कमजोर करना जारी रखती हैं। यह वास्तविकता अम्बेडकर जी की इस चेतावनी की पुष्टि करती है कि कानूनी प्रावधान, सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन के बिना, गहराई से निहित पदानुक्रम को समाप्त नहीं कर सकते हैं (Ambedkar, 1949)

6.2. आर्थिक असमानता और गरीबी

आर्थिक असमानताएँ बहुत अधिक बनी हुई हैं, जिससे वंचित समूहों द्वारा राजनीतिक अधिकारों के पर्याप्त प्रयोग को सीमित कर दिया गया है। अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) को असमान रूप से उच्च गरीबी दर, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित पहुंच और रोजगार के सीमित अवसरों का अनुभव करना जारी है (Jaffrelot, 2005) आर्थिक हाशिए पर रहना राजनीतिक उपेक्षित को मजबूत करता है, क्योंकि जो लोग अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं, उनके पास अक्सर राजनीतिक प्रक्रिया में प्रभावी ढंग से शामिल होने के लिए कम समय, संसाधन और प्रभाव होता है।

6.3. शैक्षिक विषमताएँ

अम्बेडकर जी शिक्षा को सामाजिक सशक्तिकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखते थे। यद्यपि , शैक्षिक असमानता एक बड़ी बाधा बनी हुई है। उपेक्षित पड़े समुदायों में स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता सामान्यतया अच्छी नहीं होती है, जिससे साक्षरता दर कम होती है, उच्च शिक्षा में भागीदारी कम होती है और ऊपर की ओर गतिशीलता सीमित होती है (Ro-drigues 2002)। न्यायसंगत शिक्षा के बिना, अंबेडकर ने जिस दीर्घकालिक संरचनात्मक परिवर्तन की कल्पना की थी, वह गंभीर रूप से बाधित है।

6.4. कम प्रतिनिधित्व और टोकनिज़्म

जबकि संवैधानिक प्रावधान आरक्षित सीटों के माध्यम से राजनीतिक प्रतिनिधित्व की गारंटी देते हैं, यह हमेशा नीति निर्माण में पर्याप्त भागीदारी या प्रभाव में परिवर्तित नहीं हुआ है। अक्सर, हाशिए पर पड़े समुदायों के प्रतिनिधियों को राजनीतिक दलों और विधायी निकायों के भीतर प्रणालीगत बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जिससे संरचनात्मक परिवर्तन के लिए प्रभावी ढंग से वकालत करने की उनकी क्षमता सीमित हो जाती है (Galanter, 1984) इसके परिणामस्वरूप प्रतीकात्मकता का एक रूप होता है, जहां वास्तविक सशक्तिकरण के बिना संख्यात्मक उपस्थिति प्राप्त की जाती है।

6.5. बहुसंख्यक राजनीति और सामाजिक ध्रुवीकरण

अम्बेडकर जी अल्पसंख्यक अधिकारों को कमजोर करने वाले बहुसंख्यकवाद के खतरों से पूरी तरह वाकिफ थे। समकालीन भारत में, बढ़ते राजनीतिक ध्रुवीकरण और पहचान-आधारित लामबंदी ने कई बार बंधुत्व के संवैधानिक लोकाचार को नष्ट कर दिया है (Austin, 1999) ऐसे माहौल में, संवैधानिक सुरक्षा उपायों को लोकलुभावन दबावों या भेदभावपूर्ण नीतिगत उपायों से कमजोर किया जा सकता है, जिससे सामाजिक न्याय और राजनीतिक समानता दोनों को खतरा हो सकता है।

6.6.संवैधानिक नैतिकता का क्षरण

अम्बेडकर जी ने लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए संवैधानिक नैतिकता पर जोर दिया-जिसका अर्थ है कि नेताओं और नागरिकों को संविधान की भावना के अनुसार कार्य करना चाहिए, न कि केवल पाठ के अनुसार। फिर भी, संवैधानिक मूल्यों के उल्लंघन-चाहे भेदभावपूर्ण कानूनों के माध्यम से, राज्य शक्ति का दुरुपयोग, या स्वतंत्र संस्थानों को कम करने के माध्यम से-ने भारतीय लोकतंत्र के लचीलेपन को चुनौती दी है (Ambedkar, 1949)

जातिगत भेदभाव, आर्थिक असमानता, शैक्षिक नुकसान और राजनीतिक कम प्रतिनिधित्व की दृढ़ता अंबेडकर के सपने को साकार करने में चुनौती की गहराई को दर्शाती है। ये संरचनात्मक बाधाएं उनके इस विश्वास की पुष्टि करती हैं कि सामाजिक न्याय की दिशा में निरंतर प्रयासों के बिना राजनीतिक समानता अस्थिर है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए न केवल संवैधानिक प्रावधानों को लागू करने की आवश्यकता है, बल्कि निरंतर सामाजिक सुधार, समावेशी आर्थिक विकास और स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे में निहित नागरिक संस्कृति की खेती की भी आवश्यकता है।

7. आज के संदर्भ में अम्बेडकर की लोकतांत्रिक नैतिकता

भारतीय संविधान को अपनाने के सात दशक से अधिक समय के बाद, डॉ. अम्बेडकर का लोकतांत्रिक लोकाचार भारत के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य के लिए गहरा प्रासंगिक है। राजनीतिक समानता और सामाजिक न्याय की अविभाज्यता पर उनका आग्रह समकालीन शासन की चुनौतियों और अवसरों में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। आज के संदर्भ में-तेजी से आर्थिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक ध्रुवीकरण से चिह्नित-अंबेडकर का ढांचा लोकतंत्र को गहरा करने के लिए एक चेतावनी और मार्गदर्शक दोनों के रूप में कार्य करता है।

7.1. स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थायी प्रासंगिकता

अम्बेडकर जी की स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की तिकड़ी भारत की लोकतांत्रिक यात्रा को आगे बढ़ाने के लिए एक नैतिक दिशा प्रदान करती है। उनके विचार में स्वतंत्रता, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रताओं को शामिल करने के लिए राजनीतिक क्षेत्र से परे फैली हुई है। समानता संरचनात्मक बाधाओं, विशेष रूप से जाति और आर्थिक असमानताओं को समाप्त करने की मांग करती है। बंधुत्व सामाजिक एकजुटता सुनिश्चित करता है, स्वतंत्रता को कुछ लोगों का विशेषाधिकार बनने से रोकता है और समानता को केवल एक कानूनी सिद्धांत बने रहने से रोकता है (Ambedkar, 1949)

समकालीन भारत में, जहां पहचान की राजनीति और सामाजिक-आर्थिक विभाजन अक्सर राजनीतिक कथा पर हावी होते हैं, बंधुत्व के सिद्धांत ने नए सिरे से तात्कालिकता ले ली है। आपसी सम्मान और एकजुटता के बिना, लोकतंत्र के शासन की एक समावेशी प्रणाली के बजाय बहुसंख्यकवादी शासन तक सीमित होने का खतरा है।

7.2. तीव्र परिवर्तन के युग में चुनौतियां

वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन और आर्थिक उदारीकरण ने भारत के सामाजिक-आर्थिक ढांचे को नया रूप दिया है। जहां इन विकासों ने नए अवसर पैदा किए हैं, वहीं उन्होंने असमानताओं और सामाजिक विखंडन को भी तेज किया है। उपेक्षित पड़े समुदायों-विशेष रूप से दलितों, आदिवासियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों-को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रभाव तक पहुंचने में बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है (Jaffrelot, 2005) ये रुझान अंबेडकर की इस चेतावनी को प्रतिध्वनित करते हैं कि ठोस सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के बिना औपचारिक राजनीतिक अधिकार अपर्याप्त हैं।

7.3. व्यवहार में संवैधानिक नैतिकता

संवैधानिक नैतिकता पर अंबेडकर का जोर-पक्षपातपूर्ण या सांप्रदायिक हितों पर संविधान की भावना को बनाए रखने का दायित्व-ध्रुवीकृत राजनीति के युग में तेजी से प्रासंगिक है। संवैधानिक नैतिकता के लिए आवश्यक है कि नेता और नागरिक दोनों ही लोकप्रिय दबाव के बावजूद सभी, विशेष रूप से अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध हों (Austin, 1999) हालांकि, विधायी अतिक्रमण, संस्थागत स्वतंत्रता के क्षरण और भेदभावपूर्ण नीतियों के उदाहरणों ने इस सिद्धांत के कमजोर होने के बारे में चिंता जताई है।

7.4. प्रतिनिधित्व और समावेशी शासन

उपेक्षित पड़े समूहों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व अंबेडकर जी के लोकाचार का एक केंद्रीय स्तंभ बना हुआ है। जबकि संवैधानिक आरक्षण ने वर्णनात्मक प्रतिनिधित्व हासिल किया है, आज चुनौती ठोस प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की है-जहां वंचित समुदायों के नेताओं का नीतिगत निर्णयों पर वास्तविक प्रभाव है। इसके बिना, प्रतिनिधित्व प्रतीकात्मक बनने का जोखिम उठाता है, जो सार्थक परिवर्तन में परिवर्तित होने में विफल रहता है (Galanter, 1984)

7.5. नागरिक समाज और लोकतांत्रिक नवीकरण

अम्बेडकर जी ने न केवल राज्य संस्थानों में बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों को आगे बढ़ाने में सामाजिक आंदोलनों और नागरिक समाज की भूमिका में भी विश्वास व्यक्त किया। जातिगत हिंसा के खिलाफ, लैंगिक न्याय के लिए और आर्थिक समानता के लिए समकालीन जमीनी आंदोलन उनकी दृष्टि के इस पहलू को मूर्त रूप देते हैं। ये आंदोलन सत्ता को जवाबदेह बनाने और यह सुनिश्चित करने में नागरिक भागीदारी के महत्व को उजागर करते हैं कि लोकतंत्र कुछ लोगों के बजाय कई लोगों की सेवा करता है।

अम्बेडकर जी का लोकतांत्रिक लोकाचार भारत के संवैधानिक लोकतंत्र के लिए एक जीवित मार्गदर्शक बना हुआ है। उनका यह आग्रह कि सामाजिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र अस्थिर है, 21वीं सदी की चुनौतियों को प्रत्यक्ष रूप से दर्शाता है। एक ऐसे संदर्भ में जहां आर्थिक असमानताएं, जाति-आधारित बहिष्कार और राजनीतिक ध्रुवीकरण बना हुआ है, अंबेडकर का ढांचा स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लिए एक नए सिरे से प्रतिबद्धता का आह्वान करता है। यह केवल एक ऐतिहासिक विरासत नहीं है, बल्कि एक सतत जिम्मेदारी है-यह सुनिश्चित करना कि सभी नागरिकों के लिए लोकतांत्रिक वादे को न केवल कानून में बल्कि जीवन के अनुभव में भी पूरा किया जाए।

8. भविष्य का मार्ग

डॉ. अम्बेडकर की लोकतांत्रिक दृष्टि एक अधूरी परियोजना बनी हुई है। जबकि भारत ने सार्वभौमिक मताधिकार और संस्थागत सुरक्षा उपायों के माध्यम से राजनीतिक समानता को शामिल करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, कानूनी अधिकारों और जीवित वास्तविकताओं के बीच का अंतर बना हुआ है। इस अंतर को पाटने के लिए न केवल अंबेडकर के सिद्धांतों की पुष्टि की आवश्यकता है, बल्कि असमानता के समकालीन रूपों को संबोधित करने वाली नवीन रणनीतियों की भी आवश्यकता है।

8.1. मजबूती देना समावेशी शिक्षा

अम्बेडकर के सामाजिक परिवर्तन के दर्शन के केंद्र में शिक्षा थी। उन्होंने इसे "बाघिन के दूध" के रूप में देखा, जो व्यक्तियों को अपने अधिकारों का दावा करने और संरचनात्मक अन्याय को चुनौती देने के लिए सशक्त बनाता है (Ambedkar, 1936/2014) आज, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच का विस्तार-विशेष रूप से उपेक्षित पड़े समुदायों के लिए-महत्वपूर्ण बना हुआ है। इसमें ग्रामीण विद्यालय के बुनियादी ढांचे में सुधार, शिक्षक प्रशिक्षण को बढ़ाना और जाति, लिंग और अल्पसंख्यक चिंताओं को संबोधित करने वाले समावेशी पाठ्यक्रम को बढ़ावा देना सम्मिलित है। उच्च शिक्षा संस्थानों को सकारात्मक कार्रवाई और वित्तीय सहायता के माध्यम से पहुंच को व्यापक बनाना चाहिए, पेशेवर और शैक्षणिक स्थानों में समान भागीदारी सुनिश्चित करना चाहिए (Jaffrelot, 2005)

8.2. आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक गतिशीलता

आर्थिक असमानता राजनीतिक समानता को लगातार कमजोर कर रही है। राज्य के नेतृत्व में पुनर्वितरण और श्रम सुरक्षा के लिए अंबेडकर का आह्वान धन की बढ़ती खाई के युग में प्रासंगिक बना हुआ है। सामाजिक सुरक्षा प्रणालियों को मजबूत करना, कौशल विकास को बढ़ावा देना और छोटे उद्यमियों-विशेष रूप से महिलाओं और उपेक्षित पड़े समूहों के लिए ऋण तक समान पहुंच सुनिश्चित करना-महत्वपूर्ण कदम हैं। नीतियों को शोषणकारी श्रम प्रथाओं के खिलाफ सुरक्षा उपायों के साथ ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में रोजगार सृजन को प्राथमिकता देनी चाहिए (Galanter, 1984)

8.3. महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रतिनिधित्व

जबकि संवैधानिक आरक्षण ने वर्णनात्मक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया है, अब लक्ष्य ठोस प्रतिनिधित्व होना चाहिए, जहां वंचित समूहों के निर्वाचित नेता नीतिगत एजेंडे और संसाधन आवंटन को प्रभावित करते हैं। इसके लिए हाशिए पर रहने वाले राजनीतिक नेताओं के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रमों और राजनीतिक दलों के भीतर सुधारों की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे प्रतीकात्मक समावेश के लिए केवल वाहनों के बजाय सशक्तिकरण के लिए मंच के रूप में काम करें (Austin, 1999)

8.4. संवैधानिक नैतिकता को पुनर्जीवित करना

अम्बेडकर जी के संवैधानिक नैतिकता के सिद्धांत-संविधान की भावना को बनाए रखने के लिए नैतिक प्रतिबद्धता-को राजनीतिक व्यवहार और सार्वजनिक चेतना में पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। इसमें संस्थागत नियंत्रण और संतुलन को मजबूत करना, न्यायिक स्वतंत्रता की रक्षा करना और नागरिक शिक्षा को बढ़ावा देना शामिल है जो नागरिकों को लोकतांत्रिक मानदंडों की रक्षा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। नागरिक समाज और मीडिया सरकारों को संवैधानिक मूल्यों के प्रति जवाबदेह ठहराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेष रूप से अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा करने और स्वतंत्रता के क्षरण को रोकने में (Ambedkar, 1949)

8.5. ध्रुवीकृत समाज में बंधुत्व को बढ़ावा देना

तेजी से ध्रुवीकृत हो रहे सामाजिक-राजनीतिक माहौल में, अंबेडकर की लोकतांत्रिक तिकड़ी में सबसे कम चर्चा की जाने वाली लेकिन सबसे आवश्यक बंधुत्व पर नए सिरे से जोर देने की आवश्यकता है। सामाजिक सामंजस्य कार्यक्रम, अंतर-सामुदायिक संवाद और समावेशी सार्वजनिक आख्यान पहचान-आधारित विभाजन का मुकाबला करने में मदद कर सकते हैं। सार्वजनिक नीतियों को साझा नागरिक स्थानों, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और समुदाय आधारित पहलों को बढ़ावा देना चाहिए जो जाति, धर्म और क्षेत्र के बीच विभाजन को पाटते हैं।

8.6. समावेशन के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना

ई-गवर्नेंस और ऑनलाइन शिक्षा के विस्तार से लेकर कल्याणकारी योजनाओं तक पहुंच में सुधार तक असमानता को कम करने के लिए डिजिटल उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, सामाजिक सुधार के बिना तकनीकी प्रगति के विरुद्ध अंबेडकर जी की चेतावनी प्रासंगिक बनी हुई है; प्रौद्योगिकी को डिजिटल विभाजन को दूर करने के प्रयासों के साथ होना चाहिए, यह सुनिश्चित करते हुए कि हाशिए पर रहने वाले समूह और पीछे न छूटें।

आगे का रास्ता सामाजिक न्याय को शासन के हर पहलू में एकीकृत करने में निहित है, जो इसे राजनीतिक लोकतंत्र के कामकाज से अविभाज्य बनाता है। अम्बेडकर का दृष्टिकोण एक नैतिक आधार और एक व्यावहारिक रोडमैप दोनों प्रदान करता है: शिक्षा में निवेश करना, आर्थिक निष्पक्षता सुनिश्चित करना, राजनीतिक भागीदारी को गहरा करना, संवैधानिक नैतिकता को बनाए रखना और भाईचारे का पोषण करना। ये केवल नीतिगत निर्देश नहीं हैं, बल्कि एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्धताएं हैं जहां स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व वास्तविक जीवन हैं। इस एकीकरण को साकार करने से ही भारत अंबेडकर के लोकतांत्रिक सपने को एक संवैधानिक आश्वासन से अपने सभी नागरिकों के लिए एक जीवंत अनुभव में बदल सकता है।

संदर्भ

Ambedkar, B. R. (1936/2014). Annihilation of Caste (Expanded ed.). New Delhi: Navayana.
Ambedkar, B. R. (1949). Constituent Assembly Debates, Vol. XI, 25 November 1949. Government of India.
Austin, G. (1999). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. New Delhi: Oxford University Press.
Galanter, M. (1984). Competing Equalities: Law and the Backward Classes in India. Berkeley: University of California Press.
Jaffrelot, C. (2005). Dr. Ambedkar and Untouchability: Analysing and Fighting Caste. New Delhi: Permanent Black.
Ambedkar, B. R. (2014). States and Minorities. In V. Rodrigues (Ed.), The Essential Writings of B.R. Ambedkar (pp. 382–429). New Delhi: Oxford University Press. (Original work published 1945)
Ambedkar, B. R. (2014). States and Minorities. In V. Rodrigues (Ed.), The Essential Writings of B.R. Ambedkar (pp. 382–429). New Delhi: Oxford University Press. (Original work published 1945)
Rodrigues, V. (2002). Democracy. In V. Rodrigues (Ed.), The Essential Writings of B.R. Ambedkar (pp. 323–325). New Delhi: Oxford University Press.
Rodrigues, V. (2002). The Essential Writings of B.R. Ambedkar. New Delhi: Oxford University Press.